ग्वालियर-दुर्गके कुछ जैनमूर्त्ति-निर्माता एवं महाकवि रइधू

राजाराम जैन

जैनमूर्त्तिकलाकी दृष्टिसे ग्वालियर-दुर्गका अपना विशेष महत्त्व है। वहाँ पर प्राप्त सभी जैन मूर्त्तियों-के प्राचीन इतिहासका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन तो अभी तक नहीं हो सका है, फिर भी इसके प्रमाण उपलब्ध हैं कि नौवीं सदी ईस्वीसे वहाँ उक्त कलाका उत्तरोत्तर विकास होता रहा। ११–१२वीं सदीमें तो ग्वालियर-नगर अथवा दुर्गमें ही नहीं बल्कि समस्त मध्यभारतमें जैनमूर्तिकलाके साथ-साथ जैनधर्म एवं साहित्यका भी प्रचुर प्रचार रहा। इस सन्दर्भमें इम्पीरियल गजैटियर[1]का निम्न उल्लेख महत्त्वपूर्ण है :—

"In the eleventh and twelveth centuries the Jain Religion was the cheif form of worship of the highest classes in Central India and the remains of temples and images belonging to this sect are with all over the agency"

आगे चलकर उसके प्रचुर रूपसे विकसित होनेके प्रमाण १५–१६वीं सदीमें पुनः प्राप्त होते हैं, जो कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण हैं। ग्वालियर-दुर्गमें उपलब्ध जैन मूर्तियाँ तथा उनके अभिलेखोंका गहन अध्ययन किया जाय तो तत्कालीन मध्यभारतीय इतिहासकी कई प्रचलित मान्यताओं पर नया प्रकाश पड़

---

१ Imperial Gazetteer of India Vol. IX, 1908 A.D., Page 353.

उक्त गजैटियरमें जिस समयकी बात कही गई है, उस समय वहाँकी प्रधान जातियोंमें जैन-जातिकी गणना होती थी। उनकी आयु, समृद्धि, स्वास्थ्य एवं शिक्षाके सम्बन्धमें भी निम्न उल्लेख दृष्टव्य हैं :

"The age statistics show that the Jainas, who are the richest and best nourished community, live the longest, while the Animists and Hindus show the greatest fecundity," (Page 348.)

....Omitting Christians and others (chiefly Parsis) Jainas are the best educated community 19% being Literate, while Mosalmans come next with 8% followed by Hindus with 3% (Page 348).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता है। जैन साहित्य एवं कलाके विकासकी दृष्टिसे उक्त काल स्वर्णकाल ही कहा जा सकता है। इस स्वर्णकालका जनक तोमरवंशी राजा डूँगरसिंह (वि० सं० १४८१—१५१०) एवं उनका पुत्र राजा कीर्त्तिसिंह (वि० सं० १५१०—१५३६) है। इन्हीं राजाओंके समयमें अपभ्रंश भाषाके धुरन्धर महाकवि रइधू भी हुए हैं, जिन्होंने लगभग तीससे भी अधिक विशाल ग्रन्थोंका प्रणयन किया था, जिनमेंसे अभी चौबीस हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं[1]। अपनी दैवी प्रतिभा, ओजस्वी कविता, अगाध पांडित्य, कठोर साधना एवं सहज एवं उदार स्वभावके कारण ग्वालियर-राज्यमें ऐसे लोकप्रिय हुए कि वे वहाँके जन-जनके कवि एवं श्रद्धाभाजन बन गए। विद्यारसिक तथा जैनधर्मके परमश्रद्धालु राजा डूंगरसिंह तो उनके व्यक्तित्वसे ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने कविको अपने दुर्गमें ही रहकर उसे अपनी साहित्य-साधनाका केंद्र बनानेका साग्रह अनुरोध किया, जिसे कविने स्वीकार भी कर लिया था। कविने स्वयं लिखा है :—

गोवग्गिरिदुग्गमि णिवसंतउ बहुसुहेण तहिं। सम्मइ० १।३।१०

महाकवि रइधू जैन थे अतः समस्त जैन समाज भी उनका अनुयायी था। जो अर्थहीन थे वे दर्शन-स्पर्शनसे कृतकृत्य होते थे तथा जो धनकुबेर थे वे उसके संकेतपर अपनी गाढी कमाईकी थैलियोंका सदुपयोग करनेके लिये तत्पर रहते थे। ऐसे लोगोंमें संघवी कमलसिंह, खेल्हा ब्रह्मचारी, असपति साहू, रणमल साहू, खेऊ साहू, लोणा साहू, हरसी साहू, भुल्लण साहू, तोसउ साहू, हेमराज, खेमसिंह साहू, आढू साहू, संघवी नेमदास, श्रमणभूषण कुन्थुदास, होलू साहू एवं कुशराज आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। रइधू-साहित्यके निर्माणमें उक्त श्रावकोंने उन्हें आश्रयदान दिया था और उन्हींकी सत्प्रेरणासे कविने अपने ग्रन्थोंका प्रणयन किया था। ग्रन्थोंकी आद्यन्त प्रशस्तियोंसे उक्त श्रावकोंकी १२–१२ पीढ़ियों तकका विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है, जिनसे ग्वालियरकी तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि परिस्थितियों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

उक्त धनकुबेर श्रावकोंमेंसे संघवी कमलसिंह, खेल्हा ब्रह्मचारी, असपति साहू, संघाधिप नेमदास आदिके नाम अत्यन्त प्रमुख हैं। इन्होंने रइधूकी आज्ञासे जैनमूर्त्तियोंका निर्माण एवं उनके प्रतिष्ठा-समारोहोंमें अपनी न्यायोपार्जित अटूट द्रव्यराशिका सदुपयोग किया। महाकवि रइधूने संघवी कमलसिंहको गोपाचलका "तीर्थनिर्माता" कहा है, जो उपयुक्त ही है। कमलसिंहकी प्रेरणासे लिखे गये रइधूकृत 'सम्मतगुणणिहाणकव्व'की प्रशस्तिके अनुसार कमलसिंहने ग्वालियर-दुर्गमें एक विशाल आदिनाथ भगवानकी मूर्त्तिका निर्माण एवं प्रतिष्ठा कराई थी। अन्य मूर्त्ति एवं मन्दिर-निर्माताओं तथा प्रतिष्ठाकर्त्ताओंके कार्योंमें भी इनका सक्रिय सहयोग रहता था। एक बार कमलसिंहने अपनी आदिनाथ भगवानकी मूर्त्तिकी प्रतिष्ठाके लिये जब राजा डूंगरसिंहसे आज्ञा चाही तब डूंगरसिंहने उन्हें केवल अपनी स्वीकृति मात्र ही प्रदान न की बल्कि दो आदर्श राजाओं—सोरठके राजा वीसलदेव एवं जोगिनीपुरके राजा पेरोजसाहि—द्वारा प्रजाजनोंमें श्रेष्ठ वस्तुपाल-तेजपाल एवं सारंगसाहुको प्रदत्त धार्मिक कार्योंमें हर प्रकारके साहाय्यका उल्लेख करते हुए कहा[3] कि मैं भी अपने राज्यमें उन्हीं राजाओंके आदर्शोंका पालन करता हूँ। अतः आदिनाथकी प्रतिष्ठाके समय तुम "जो-जो माँगोगे वही-वही दूँगा (जं जं मग्गहु तं तं देसमि)। तुम अपना धर्मकार्य निश्चिन्ततापूर्वक सम्पूर्ण करो।" इतना कहकर राजाने

१ रइधू-साहित्यके परिचयके लिये "भिक्षु स्मृति ग्रन्थ"—कलकत्ता(१९६१)में प्रकाशित "सन्धिकालीन अपभ्रंश-भाषाके महाकवि रइधू" नामक मेरा निबन्ध द्रष्टव्य है।

२ सम्मत्त० १।१५।४।

३ सम्मत्तगुणणिहाणकव्व १।११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमलसिंहको सम्मान स्वरूप अपने हाथसे पानका बीड़ा दिया। कमलसिंह भी प्रसन्नतापूर्वक वापिस अपने घर आया और दूसरे ही दिन प्रतिष्ठा-समारोहका कार्य प्रारम्भ कर दिया।

उक्त विशाल मूर्त्तिके प्रतिष्ठा-कार्यको सम्पन्न करनेवाले थे महाकवि तथा प्रतिष्ठाचार्य रइधू। इस मूर्त्ति पर उत्कीर्ण अभिलेखसे भी इसका समर्थन होता है कि मूर्त्तिनिर्माता कमलसिंह था तथा प्रतिष्ठाचार्य थे रइधू। अन्तर इतना ही है कि मूर्त्तिलेखमें कमलसिंहके नामके स्थान पर 'काला' शब्द पढ़ा गया। किन्तु उसमें या तो लेखवाचकको कुछ भ्रम हुआ है अथवा प्रतीत होता है कि शीत, गर्मी एवं बरसातके मौसमी प्रभावने बीच-बीचमें अभिलेखको प्रभावित करके ही 'कमलसिंह'को 'काला' बना दिया है। वस्तुतः वह 'काला' नहीं 'कमलसिंह' ही है, क्योंकि रइधूकृत 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व'की प्रशस्तिमें उल्लिखित कमलसिंहकी वंशावली[2] तथा लेखकी वंशावली आदि सभी सदृश हैं।

दूसरा मूर्त्ति-निर्माता था खेल्हा ब्रह्मचारी, जो हिसारका निवासी था तथा जिसका विवाह कुरुक्षेत्रके निवासी सहजा साहूकी पौत्री एवं तेजा साहूकी पुत्री क्षेमीके साथ हुआ था। सन्तान-लाभ न होनेसे इन्होंने अपने भतीजे हेमाको गृहस्थीका भार सौंपकर ब्रह्मचर्य धारण कर लिया था[3] तथा उसी स्थितिमें उन्होंने ग्वालियर-दुर्गमें चन्द्रप्रभ भगवानकी मूर्त्तिका निर्माण तथा कमलसिंहके सहयोगसे शिखरबन्द मन्दिरका निर्माण और साथ ही मूर्त्तिप्रतिष्ठाका कार्य सम्पन्न कराया था। रइधूने लिखा है :

तुम्हह पसाएण भवदुहकयंतस्स। ससिपहजिणेंदस्स पडिमा विसुद्धस्स॥
काराविया मइं जि गोवायले तुंग। उड्डचावि णामेण तित्थम्मि सुहसंग॥
आजाहिया हाण महु जणाण सुपवित्त। जिणदेव मुणिपाय गंधोव सिरसित्त॥
दुल्लंभु णरजम्मु महु जाइ इहु दिण्णु। संगहिंवि जिणदिक्ख मयणारि जिं छिण्णु॥
तहिं पढिय उवयारं कारणेन जिणसुत्ति। काराविया ताहि सुणिमित्त ससिदित्ति॥
कलिकालु जिणधम्म धुर धार पूढस्स। तिजयालये सिहरि जस सुज्झ रूढस्स॥
सिरि कमलसिंहस्स संघाहिवस्सेव। सुसहायएणावि तं सिद्ध इह देव॥

(सम्मइ० १।४।११–१९)

ग्वालियर-दुर्गका तीसरा मूर्त्ति-निर्माता है असपति साहू, जिसका पिता तोमरवंशी राजा डूंगरसिंहका सम्भवतः खाद्य एवं आपूर्त्ति मंत्री (Food and Civil Supply Minister) था। चार भाइयोंमें यह मंझला भाई था। चतुर्विध संघका भारवहन करनेसे इसने "संघपति" की उपाधि प्राप्त की थी। विद्यारसिक, धर्मनिष्ठ एवं समाजका प्रधान होनेके साथ-साथ वह कुशल राजनीतिज्ञ भी था। प्रतीत होता है कि वह भी समकालीन राजा कीर्त्तिसिंहका दीवान, सुरक्षामन्त्री अथवा प्रधान सलाहकार था। इसने श्रद्धावश अनेक जैनमूर्त्तियों एवं मन्दिरोंका निर्माण एवं उनकी प्रतिष्ठाएं कराई थीं। रइधूने कहा है :

वीयउ पुणु परउवयारलीणु। जिणगुणपरिणय उद्धरियदीणु॥
जिणि काराविउ जिणुहरु ससेउ। धयवड पंतिहिं रहसूरतेउ॥

---

१ जैन शिलालेख संग्रह तृतीय भाग, (माणिक० सीरीज, बम्बई, वि० सं० २०१३) लेखांक ६३३।

२ सम्मत्तगुणणिहाणकव्व ४।३५।

३ सम्मइजिणचरिउ १०।३४।१७–३४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णियमंतत्तणि रंजियउ राउ । सावयविहाण कम्माणुराउ ॥
परणारिपरम्मुहु विगयलोहु । असपत्ति साहु जणजणियमोहु ॥

(सावय० १।४।४–७)

तथा—

पुणु बीयउ णंदणु सकियच्छें । रज्जकज्जधुरधरणसमच्छें ॥
संघाहिउ असपत्ति असंकिउ । ससिपहकरणिम्मलजसअंकिउ ॥
णिरत्तियपावपडलणिउरुंबइ । जेण पइट्ठाविय जिणबिंबइ ॥

(सावय० ६।२६।६–८.)

चौथा मूर्त्ति-निर्माता था संघाधिप नेमदास। इनकी भीखा एवं माणिकी नामकी दो पत्नियाँ थीं। नेमदास योगिनीपुरके निवासी थे। वे वहाँके वणिक्श्रेष्ठोंमें अग्रगण्य तथा समकालीन राजा प्रतापरुद्र चौहान (वि० सं० १५०६ के आसपास) द्वारा सम्मानित थे। इनके छोटे चतुर्थ भाई वीरसिंहने गिरनार-यात्रा की थी। इनके पिताका नाम तोसउ था तथा वंश सोमवंशके नामसे प्रसिद्ध था। नेमदासने ग्वालियर तथा अन्य कई स्थानों पर पाषाण एवं धातुकी बहुत-सी मूर्त्तियों एवं गगनचुम्बी जिनमन्दिरोंका निर्माण कराया था। रइधूका आशीर्वाद उन्हें प्राप्त था अतः धार्मिक एवं साहित्यिक कार्योंमें वे सदा इनके साथ रहते थे। रइधूकृत पुण्णासवकहाकी आद्यन्त प्रशस्तिमें इन्हीं बातोंका इस प्रकार उल्लेख किया गया है :—

... ... । संघाहिव णामें णेमिदासु ॥
अग्गेसरु णिववावारकज्जि । सुमहंतपुरिसपहुरुद्दरज्जि ॥
जिणबिंब अणेय विसुद्धबोह । णिम्मविवि दुग्गइपहणिरोह ॥
सुपइट्ठ काराविउ सुहमणेण । तित्थेसगोत्तु बंधियउ जेण ॥
पुणु सुरविमाणसमु सिंह खेऊं । णियपहकरपिहियउ चंदतेउ ॥
काराविउ जिं जिणणाहभवणु । मिथ्यामयमोहकसायसमणु ॥

(पुण्णासव० १।५।६–११).

तथा

भो रइधू बुह वड्ढियपमोय । ... ...
संसिद्ध जाय तुहु परममित्तु । तउ वयणामियपाणेण तित्तु ॥
पइ किय पइट्ठमहु सुहमणेण । जाजय पूरिय धणकंचणेण ॥
पुणु तुव उवएसें जिणविहारु । काराविउ मइं दुरियावहारु ॥

(पुण्णासव० १।६।८–११.)

... ताहं पढमु बुहयण वक्खाणिउ । णिव पयावरुद्द सम्माणिउ ॥
बहुविहधाउफलिहविद्दुममउ । कारावेप्पिणु अगणिय पडिमउ ॥
पतिट्ठाविवि सुहु आवज्जिउ । सिरितित्थेसरगोत्तु समज्जिउ ॥
जिं णहलग्गि सिहरु चेईहरु । पुणु णिम्मावियं ससिकरपहहरु ॥
णेमिदासु णामें संघाहिउ । जिं जिणसंघभारणिव्वाहिउ ॥

(पुण्णासव० १३।२।२–६).

रइधूने सहजपालके एक पुत्र सहदेव संघपतिको भी मूर्त्तिप्रतिष्ठापक कहा है[1] लेकिन इसके सम्बन्ध-

१ सम्मइ० १।८।४ तथा १०।३२।१–६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अन्य कोई विशेष विवरण उपलब्ध नहीं होता। जो भी हो, इतना निश्चित है कि रइधूके पूर्ववर्त्ती एवं उनके समयमें ग्वालियर दुर्गमें जैनमूर्त्तियोंका इतना अधिक निर्माण हुआ कि जिन्हें देखकर रइधूको लिखना पड़ा:—

अगणिय अण पडिम को लक्खइ। सुरगुरु ताह गणण णइ अक्खइ॥

सम्मत्त० १।१३।५.

ग्वालियर-दुर्गकी जैनमूर्त्तियों को कविने अगणित कहा है, यह उचित ही है। राजा डूंगरसिंह एवं उनके पुत्र राजा कीर्तिसिंह दोनोंने ही कुल मिलाकर ३३ वर्षों तक जैनमूर्त्तियोंके निर्माणका कार्य सम्पन्न किया था। इस विषयमें सुप्रसिद्ध इतिहासकार हेमचन्द्र रायका कथन उल्लेखनीय है[१] :

He (Dunger Singh) was a great patron of the Jaina faith and held the Jainas in high esteem. During his eventful reign the work of carving Jaina images on the rock of the fort of Gwalior was taken in hand; it was brought to completion during the reign of his successor Raja Karansingh (or Kirtisingh). All around the base of the fort, the magnificent statues of the Jaina pontiffs of antiquity gaze from their tall niches like mighty guardians of the great fort and its surrounding landscape. Babur was much annoyed by these rock sculptures as to issue orders for their destruction in 1557 A.D.

मूर्त्तिभञ्जक बाबरके उस आदेशका अंग्रेजी अनुवाद कनिंघमने इस प्रकार किया है[२] :

"They have hewn the solid rock of this Adivā and sculptured out of it idols of longer and smaller size. On the south part of it is a large size which may be about 40 feet[३] in height. These figures are perfectly naked without even a rag to cover the parts of generation. Adivā[४] is far from being a mean place, on the contrary, it is extremely pleasant. The greatest fault consists in the idol figures all about it. I directed these idols to be destroyed."

ग्वालियर-दुर्गकी जैन मूर्त्तियोंको आधुनिक दृष्टिसे प्रकाशमें लानेवालोंमें सर्वप्रथम श्रेय फादर माण्टसेरॉट(Father Monteserrat)को है, जो एक योरुपियन घुमक्कड़ थे तथा जिन्होंने सम्राट अकबरके समयमें भारतकी पदयात्रा की थी। उन्होंने सूरतसे दिल्ली जाते समय ग्वालियर-दुर्गकी जैन मूर्तियोंके दर्शन किये थे और कुछ दिन रुककर उनके इतिहास पर कुछ प्रकाश डालनेका प्रयास किया था।[५]

उक्त माण्टेसरॉटके बाद जनरल कनिंघमने ग्वालियर-दुर्गकी जैन-मूर्त्तियोंका कुछ विवेचन किया।

१ Romance of the fort of Gwalior. (1931) Pages 19-20.

२ Murry's Northern India, Page 381-382.

३ बाबरने भूलसे आदिनाथकी मूर्त्तिकी ऊँचाई ४० फीट लिख दी, वस्तुतः वह ५७ फीट ऊँची है।

४ बाबर द्वारा उपयुक्त 'अदिवा' शब्दका अर्थ कानिंघम आदि किसीने भी स्पष्ट नहीं किया। मेरे ख्यालसे बाबरने 'आदिनाथ'के लिये उक्त शब्दका प्रयोग किया है।

५ Asiatic Researches Vol. IX, Page 213.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कनिंघमके बाद भी लोगोंने उनपर लिखा है अवश्य, किन्तु वह सब कनिंघम साहबकी नकल अथवा उनके कथनका सारांश मात्र ही है। कनिंघमने उक्त मूर्त्तियोंकी कलासे प्रभावित होकर लिखा है[1]:—

The (Jaina) rock sculptures of Gwalior are unique in northern India, as well for their number, as for their gigantic size.

इण्डियन स्टेट रेलवेके प्रकाशन विभागने भी अपनी ग्वालियर सम्बधी एक पुस्तिकामें उक्त मूर्त्तियोंको Rock giants की उपमा देते हुए लिखा है[2]:

Round the base of Gwalior-fort are several enormous figures of the Jaina Tirthankaras or pontiffs which vie in dignity with the colossol effigies of that greatest of all self advertisers, Ramses II, who plastered Egypt with records of himself and his acheivements. These Jaina statues were excavated from 1440–73. A.D.

उपलब्ध विविध सामग्रीके आधार पर लिखित यही है ग्वालियर-दुर्गकी कुछ जैनमूर्त्तियोंकी अति-संक्षिप्त कहानी। ग्वालियर-दुर्गको जब "Pearl in necklace of the castles of Hind" कहा गया है तब भला उसमें सामान्य मूर्त्तियोंका निर्माण कैसे किया-कराया जाता? उनका कला-वैभव अद्भुत है। वे अपनी सौम्यता एवं भव्यतामें होड़ लगाती-सी प्रतीत होती हैं। जिन मर्मी कुशल कलाकारोंने इन्हें गढ़ा होगा वे आज हमारे सम्मुख नहीं हैं, उनके नाम भी अज्ञात हैं, उन्होंने इसकी परवाह भी न की होगी किन्तु उनकी अनोखी कला, अनुपम शिल्प-कौशल, अतुलित धैर्य एवं अटूट साधना मानों इन मूर्त्तियोंके माध्यमसे हमारे सामने साकार उपस्थित है। और उनके निर्माता संघवी कमलसिंह, खेल्हा, असपति, नेमदास एवं सहदेवके सम्बन्धमें क्या लिखा जाय? उनके आस्थावान् विशाल हृदयोंमें जो श्रद्धा-भक्ति समाहित थी, उसके मापन हेतु विश्वमें शायद ही कहीं मापयन्त्र मिल सके। हाँ, जिनके दिव्य नेत्र विकसित हैं, जो कला-विज्ञानकी अन्तरात्माके निष्णात हैं, जो इतिहास एवं संस्कृतिके अमृतरसमें सराबोर हैं, वे उक्त मूर्त्तियोंकी भव्यता, सौम्यता, विशालता एवं कलाका सूक्ष्म निरीक्षण कर उनके हृदयकी गहराईका अनुमान अवश्य लगा सकते हैं। और उन मूर्तियोंके निर्माण करानेकी प्रेरणा देकर उनमें प्राणप्रतिष्ठा करानेवाले रइधू! जिसकी महती कृपासे कुरूप, उपेक्षित एवं भद्दे आकारके कर्कश शिलापट्ट भी महानता, शान्ति एवं तपस्याके महान आदर्श बन गये, ऊबड़-खाबड़ एवं भयानक स्थान तीर्थस्थलोंमें बदल गये, उत्पीड़ित एवं सन्तत प्राणियोंके लिये जो आराधना, साधना एवं मनोरथप्राप्तिके पवित्र मन्दिर एवं वरदानगृह बन गये। ज्ञानामृतकी अजस्र धारा प्रवाहित करनेवाले उस महान् आत्मा, सुधी, महाकवि रइधूके गुणोंका स्तवन भी कैसे किया जाय? मेरी दृष्टिसे उसके समग्र कार्योंका प्रामाणिक विवेचन एवं प्रकाशन ही उसके गुणोंका स्तवन एवं उसके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी तथा साहित्य और कला जगत् तभी उसके महान् ऋणसे उऋण हो सकेगा।

---

१ Murry's Northern India, Pages 381-382.

२ 'Gwalior' published by the publicity Deptt. Indian state Rly. 1956.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org